UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182610
UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—68—11-1-68—2,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81.08 V65A Accession No. H3640

Author विद्यार्थी, रामसकल -

Title अमरावती - 1958 .

This book should be returned on or before the date last marked below.

प्रकाशकः

देव कला-परिषद्

भगवानपुर बरहेता,

पो० कुढ़वा बरहेता,

(दरभंगा)

Checked 1969

समर्पण : मर्म-संगिनी श्रीमती जानकी देवी को

आवरण : कलाधर

संस्करण : प्रथम १०००, अप्रैल, १९५८

प्रधान वितरक : जनता ग्रन्थालय, मुजफ्फरपुर

(बिहार)

मूल्य : दो रुपये पचास नये पैसे

[सर्वाधिकार लेखक के अधीन]

मुद्रकः

श्री कपिलेश्वर मिश्र

श्री गोपाल प्रेस, मुजफ्फरपुर ।

भूमिका

गीति-कविता के विरुद्ध वाग्युद्ध चल रहा है; किन्तु गीत है जो अपनी सहज स्वर-माधुरी तथा सजल भाव-प्रवणता के कारण सहृदयों के हृदय को असाधारण रूप से आकृष्ट किए हुए है और जन-मन की गहराइयों में भी नित-नित धँसता ही जाता है। युद्ध के लिए सन्नद्ध सैनिक भी तो गुनगुनाते हुए ही निकलते हैं, यों उन्हें सांग्रामिक अनुशासन का पालन पूरी कट्टरता के साथ करना पड़ता है।

गीति-कविता से विरोध का कारण क्या है? यही न कि वह आत्माभिव्यञ्जक होती है और सामाजिक अभावों, अभियोगों और असंगतियों को भरसक वाणी नहीं देती? कि वह व्यक्ति के मनोभावों की अभिव्यक्ति होती है, ऐसे मनोभावों की जो संघर्ष से पलायन के कारण शिथिल और अप्रौढ़ होती है? कि वह समाज-भीत अस्वस्थ भावनाओं का सुर-धनुषी जाल भर है? कि वह अपने देश और काल का प्रतिनिधित्व नहीं करती? किन्तु ये सारी दलीलें कितनी लचर हैं, इस संबन्ध में गीति-कविता के हिमायतियों ने बहुतेरे तर्क प्रस्तुत किए हैं। यहाँ उन्हें दुहराने की जरूरत नहीं।

गीति-कविता सर्वप्रिय काव्य-प्रकार है, यह उसकी तात्कालिक प्रभविष्णुता, संक्रमणशीलता से लेकर आनन्द की उदात्त भूमिका तक से सिद्ध किया जा सकता है। भावात्मक होना वस्तु की उपेक्षा से संभव नहीं है, वस्तु की वास्तविकता की उपलब्धि से ही संभव है। किसी सुमन की सुरभि की पहचान उसकी पत्तियों और डंठल के अज्ञान में से नहीं प्रकट होती। 'इन्दु' की पहली ही किरण में यह प्रकाशित हुआ था--"साहित्य स्वतन्त्र-प्रकृति, सर्वतोगामी प्रतिभा के प्रकाशन का परिणाम है। संसार में जो कुछ सत्य और सुन्दर है, वही साहित्य का विषय है।"

नए सौन्दर्य्य का निर्माण नए जीवन का ही निर्माण है। गीति-कविता मुख्यतः भावों की तीव्रता को स्वर देती है; अनुभूति की नीरवता को साभिप्राय व्यञ्जनाओं में निनादित करती है; कल्पना को पलकों में संवेदना के आँसू सजा देती है। और तब सुख-दुःख, आशा-निराशा, मिलन-विरह, हास-उच्छ्वास के कलरव से मन का सूना आँगन गूँज जाता है; भरा घर हरा हो जाता है।

कवि 'विद्यार्थी' का यह प्रथम काव्य-प्रयास अनायास गीति-कविता के सहज सौन्दर्य्य से सुवासित हो उठा है। अनुभूति की ऊष्मा से उनकी प्रत्येक कविता सजीव है और अतृप्ति की अश्रु-मालिका ने उसे एक सीमा तक अलंकृत भी कर दिया है।

प्रेम जो अतृप्ति में ही तृप्त रहता, वियोग में ही आकांक्षित सुख प्राप्त करता है, नवयौवन की परिधि में यहाँ चाँद-सा चमक रहा है :

अवयव की सुप्त शिराओं में
मुलगाई तुमने मधुर आग;
आँसू बाहर बेकार हुए,
घुल पाए दिल के नहीं दाग

मेरी पीड़ा का भार सहो हे वासन्ती !
उलझे अन्तर की बात कहो हे वासन्ती !!

सच तो यह कि कवि का अन्तर जिस उलझन की ओर इशारा करता है वह Complex न होकर सुनहले-रूपहले तारों से बुनी जाली ही है जिसमें स्वेच्छा से उसका प्रणय उलझ कर तड़पने का आनन्द ले रहा है। यह हास्य-रुदन कितना मोहक है:--

"हँस रहा तन का चमन,
उर की कली पर रो रही है !"

क्यों न हो, दिवा-निशा के आलिङ्गन के समान ही तो है वह साँझ की रंगीनी लिए हुए--मदिरा-सी मादक और हँसी-सी हसीन रंग-तरंग सँजोए हुए !

कसमसा रहा अल्हड़ यौवन
चोली का बन मोहक उभार

साँसों के झोंके से उठता
पल-पल प्याले में प्रबल ज्वार !

× ×

मदमाती तेरी छटा देख मानव भोला - भाला
पीने को हो उठता आतुर यह अधरों का प्याला,
आतुर हो उठता क्षीण बीन के तार सजाने को,
आतुर होता बाँहें पसार पल भर अपनाने को !
कलियों से पूछा मधुकर ने, "बोलो तो आज प्रिये,
क्यों इस दुनियाँ में शोभा का संसार सजा लाई ?"

× ×

प्राण में भर कर नया आह्लाद,
नाचते - गाते कहीं मकरन्द,
प्यार के बहते पवन हैं शान्त,
फूटते सहसा हृदय से छन्द,
हाय, तुम किन सीकचों में बंद !

× × ×

फिर लगी पवन का चुम्बन पाकर वल्लरियाँ मुसकाने,
ये विहग-बाल भी लगे सुनाने अपने नए तराने,
बस शमा जहाँ जलगई कि जलने लगे वहाँ परवाने,
फूलों की मस्ती, मोर-नृत्य पल भर भी नहीं सुहाए !

ऐसी सौरभ-भरी केसर-क्यारियों से नन्दनवन-सी फूल उठी है कवि की प्रणय-कविता कि जिसमें अकुण्ठित उद्‌गारों की बहार पद-पद पर रस-रंग बरसाती है।

किन्तु पूरी 'अमरावती' प्रणयावेश का ही परिणाम नहीं है। कवि सर्वत्र आत्मपरक अनुभूतियों की विभूतियाँ ही नहीं बिखेरता। वह जीवन के प्रति गहरी निष्ठा भी व्यक्त करता है; नव-निर्माण के अगणित सपने भी देखता है। व्यक्ति से समाज की ओर उसकी दृष्टि फैलती गई है और अगणित मनुष्यों के कण्ठ में घुटते हुए उद्‌गारों को वह आकाङ्क्षा के तार सुरों से निनादित कर सका है। सच तो यह कि उसका हृदय बुद्धि का सहचरहै जिस कारण कुण्ठा या घुटन का वह शिकार नहीं हुआ। उसका प्यार जीवन का नैसर्गिक अधिकार है; उसका कृतित्व मानवता के प्रति उत्तरदायित्व का आवेगपूर्ण उत्साह। उसकी अन्तर्मुखता रुग्ण नहीं है; उसकी बहिर्मुखता असन्तुलित नहीं है और यही कारण है कि कवि की स्वस्थ दृष्टि समान रूप से बाहर-भीतर को जोड़ती चलती है।

आज हम स्वदेश के प्रति अनुराग का प्रकाशन शब्दों के बाजे बजाकर ही नहीं कर सकते। उच्छृङ्खल भावुकता का वह युग कब का बीत चुका। अब तो ग्राम-निर्माण की दिशा में नए कदम उठाकर ही अपने देश की सच्ची सेवा की जा सकती है। तात्पर्य्य यह कि युग का तकाजा रचनात्मक मनोवृत्ति अपनाने

का है। काव्य केवल कलात्मक सौन्दर्य्य के लिए वाञ्छनीय नहीं समझा जाता, उसमें उपयोगिता के पौष्टिक तत्त्व की भी आवश्यकता समझी जाती है। कवि विद्यार्थी ने इस युग-धर्म को भलीभाँति निभाया है। उन्होंने ग्राम-श्री को ही अमरावती में परिवर्तित करने की चेष्टा की है। और, इसमें वह पूरी तरह सफल भी हुए हैं। सफलता का रहस्य सोद्देश्यता के बावजूद कविता को इतिवृत्तात्मकता से बचाने में निहित रहा है। और, इस प्रकार, उन्होंने गीति-क्षेत्र को व्यापक बनाया है :—

"सेवा के सरगम छिड़े हृदय के तारों पर
चल पड़े पाँव सहसा गाँवों के द्वारों पर !"

× × ×

भारत माता, अभय दान दो !
दो मंगल-सन्देश शान्ति का,
तरु--किसलय में फूँक प्राण दो !

× × ×

नई रोशनी के आरोही,
नवयुग के दिनमान यही हैं,
इन्हें न कह मिट्टी का बेटा,
भूतल के भगवान् यही हैं !

ये पंक्तियाँ कवि-प्रतिभा का अंगुल्या निर्देश करती हैं, ऐसी पंक्तियाँ अमरावती में सर्वत्र मिलेंगी।

विज्ञान के विस्तार-प्रस्तार ने हमारे प्राणों को प्राणोदित किया है, इस तथ्य को झुठलाया नहीं जा सकता, अतः आज का गीतकार कल के गीतकारों से भिन्न प्रतीत हो तो अचरज नहीं। सस्ती भावुकता का स्थान व्यापक सौन्दर्य्य-भावना को मिलना चाहिए—गीत को आध्यात्मिक उदात्तीकरण की ओर न ले जाकर वैज्ञानिक सन्तुलन की ओर प्रवाहित होने देना अनुचित न होगा।

कवि को भाषा पर अधिकार है, छन्दों का वह अच्छा निर्माता है और आत्म-मन्थन और वस्तु-विवेक की दिशा में अधिक अगाध और व्यापक होने के अतिरिक्त अपनी काव्य-साधना के विकास के लिए उसे और कुछ नहीं करना है।

मैं इस पुस्तक का गीति-कविता के क्षेत्र में स्वागत करता हूँ। और कवि श्री 'विद्यार्थी' को उन्हींके शब्दों में यह कहना चाहूँगा :—

नूतन भावों में पगा हुआ उत्कर्ष मिले !

हिन्दी-संस्कृत-विभाग
रामदयालु सिंह कालेज
मुजफ्फरपुर

जानकीवल्लभ शास्त्री

समर्पण

जब से समझा सहता आया
संधान नयन के तीरों का;
तेरे ही कारण मर्म बढ़ा
मेरी धुंधली तस्वीरों का !
तुमको, जिसकी मृदु छाया में
इन प्राणों को अमरत्व मिला
हँसकर सौ-सौ आघात सहे
सावन के साथ समीरों का !!

—'विद्यार्थी'

अनुक्रम

	शीर्षक		पृष्ठ संख्या
१	मुक्त बन्धन	...	१३
२	राही	...	१५
३	वासन्ती	...	२१
४	स्वदेश-गीत	...	२३
५	धरती का भगवान	...	२६
६	धीर-वीर	...	२६
७	मानव की जय	...	३३
८	चल पड़े पाँव	...	३५
६	गाँव	...	३८
१०	लेखनी है यह नये संसार की	...	४१
११	इन्हें न कह मिट्टी का बेटा	...	४५
१२	बापू का सपना	...	४७
१३	श्रद्धा के फूल	...	५१
१४	मासूम नगर	...	५५
१५	ग्रामनेता	...	५६
१६	भोले-भाले किसान	...	६३
१७	नव वर्ष	...	६७
१८	अपनी बात	...	७०
१६	जवानी	...	७२
२०	आशा	...	७५

शीर्षक		पृष्ठ संख्या
२१ विरह-गीत	...	७८
२२ कली और मधुकर	...	८१
२३ वियोगिनी राधा	...	८३
२४ याद तुम्हारी	...	८६
२५ परदेशी पाहुन आये	...	८६
२६ कल्पने !	...	६३
२७ पावस-पूनम	...	६५
२८ नव गीत	...	६६
२६ वैशाख और सावन	...	१०१
३० प्रवासी माँग रहा है प्यार	...	१०३
३१ उलझी व्यथायें	...	१०७
३२ वैधव्य की शिला	...	१०६
३३ मदनिका	...	११५
३४ किसी का दीपक बुझा न देना	...	११६
३५ विदा-वेला	...	१२१

★

अमरावती

मुक्त बन्धन

तुम सागर की लहर न बाँधो।
जग को जीवन देने वाले, देकर अमृत, जहर न बाँधो।

जानें, कब से करता आया
चाँद, लहर को मौन इशारे,
जब लहरों की नजरें बदलीं
बदल गये सब ओर नजारे,
नेह-स्नेह बहने दो निर्झर
चिर सपनों का नगर न बाँधो।
तुम सागर की लहर न बाँधो।

शायद आज सिन्धु को स्वीकृत
शशि का सजल प्रेम आमंत्रित,
सुलग पड़ी है अन्तर्ज्वाला
ज्योतिर्मय जीवन की संचित,
दो क्षण के इस मधुर मिलन को
मंजिल कह कर डगर न बाँधो।
तुम सागर की लहर न बाँधो।

महा मिलन के मधुर पर्व का
यह मोहक स्वप्निल आलिंगन,
लहर - चकोरी आज करेगी
प्रियतम की छवि का मृदु अंकन,
अपनी ललचाई आँखों से
मूक मिलन का प्रहर न बाँधो।
तुम सागर की लहर न बाँधो।

राही

राही छोड़ चला घर अपना,
दुनियाँ नई बसाने,
गीत प्यार का गाने।

फूलों में मकरन्द हँस पड़;
कली खिल पड़ी जी की,
मलिन वासना जला-जला कर
बाती जलती घी की,

नई भावनायें ले उर में
जग को चला जगाने,
दुनियाँ नई बसाने।

बजी कल्पना की शहनाई
सुख - सागर लहराया !
अन्तर का चिर दाह नयन में
सावन बनकर आया !

कोमल गीत कंठ में लेकर
बैठा वीन बजाने,
जग को गीत सुनाने।

फूँका ज्योंही वीन, कि सिहरा
संसृति का हर कोना !
चमक उठी पलभर में पीली
मिट्टी बनकर सोना !

सूखे लता-विटप भी मन को
लगने लगे सुहाने,
जो थे कभी पुराने।

नये विश्व की नूतन झाँकी—
नूतन चाँद — सितारे !
मन है फूले नहीं समाता
आज खुशी के मारे !

अपने मन में देख कला का
मन्दिर लगा सजाने,
दुनियाँ नई बसाने ।

मन्दिर था तैयार कि देवी
कौन उतर यह आई !
मेरे स्नेह चुराकर जिसने
मंगल — ज्योति जलाई !

मन की मीरा लगी नाचने,
थिरक-थिरक कर गाने,
दुनियाँ नई बसाने ।

निर्निमेष नयनों ने तब फिर
उसकी ओर निहारे,
हृदय भरा जाता राही का
आज प्यार के मारे,

स्नेहमयी प्रतिमा दुलार की
लगी मधुर मुस्काने,
दुनियाँ नई बसाने।

अंगों के सिहरन ने पूछा
'यह है कौन किशोरी!
कितने कोमल बने अधर हैं,
बाँहें गोरी - गोरी!'

उसके मन में लगी भावना
धीरे - धीरे आने,
दुनियाँ नई बसाने।

मदहोशी के जाम पिलाते
जाने नयन शराबी !
गजब ढा रहे थे मन मोहक
कोमल गाल गुलाबी !

चिकुर-जाल में उलझा-सा मन
लगा बड़ा ललचाने,
दुनियाँ नई बसाने !

'चम्पक-सा भोला-भाला मुँह,
भौंएँ कितनी प्यारी !
भूली राधा ढूंढ रही है,
शायद रास - विहारी ।'

सोचा, दो क्षण छिप कर उससे
मिल लूँ किसी बहाने,
कोई भी क्या जाने ।

बोली, "लो आशीष, तुम्हारा
प्यार बढ़े नित दूना,
मैं हूँ चाँद, नयन-भर देखो
मगर न मुझको छूना।"

मान चुका जिसको वह अपना,
वह माने, ना माने,
सोचे क्या परवाने?

× × × ×

तबसे राही रोज वहीं पर
बैठा गा लेता है,
अपने दिल की पीड़ा गाकर
कुछ बिसरा लेता है,

उसे दिखाता है गा-गाकर
दिल के घाव पुराने,
जीता इसी बहाने।

वासन्ती

मानस-मन्दिर में रोज रहो, हे वासन्ती !
उलझे अन्तर की बात कहो, हे वासन्ती !!

तव कृपा-दृष्टि की वृष्टि
मच गया हृदय में उथल-पुथल,
तेरे पावन पद चूम रहे
नव भावों के सुरभित शतदल,

अब आकर चुपके बाँह गहो, हे वासन्ती !
उलझे अन्तर की बात कहो, हे वासन्ती !!

अवयव की सुप्त शिराओं में
सुलगाई तुमने मधुर आग,
आँसू बाहर बेकाम हुए
धुल पाये दिल के नहीं दाग,

मेरी पीड़ा का भार सहो, हे वासन्ती !
उलझे अन्तर की बात कहो, हे वासन्ती !!

हे प्रेममयी ! हे कल्याणी !
तुमको मेरा शतवार नमन,
मादक साँसों से बना दिया
पतझड़ को तुमने नन्दन-वन,

सुख-सरिता में स्वाधीन बहो, हे वासन्ती !
उलझे अन्तर की बात कहो, हे वासन्ती !!

स्वदेश-गीत

भारत माता, अभय-दान दो।
दो, मंगल-संदेश शांति का,
तरु-किसलय में, फूँक, प्राण दो।
भारत माता, अभय-दान, दो॥

दूर हिमालय की चोटी से
नित गौरव तव तुम्हें पुकारें,
उदधि-गोद से धवल तरंगें
उठें, वैरियों को ललकारें,

वैरी हारें,
दूर सिधारें;
ज्योति सँवारें,

नई भावनायें दो, उर में,
ज्योतिर्मय जीवन महान दो।

उर्वर हों तेरे प्रिय कण-कण,
खिलें नये भावों के शतदल,
झूम-झूम कर हरी खेतियाँ
चूमें चरण तुम्हारे पल-पल,

गंगा के जल—
चंचल निर्मल,
धोयें पग माल,

स्निग्ध सुरभि-सागर से पूरित
स्वर्णिम रंजित नव विहान दो।

ले आदर्श अमर मानव के
राम-कृष्ण फिर से आ जायें,
विजय-प्रेम की पुण्य सन्धि पर
सुख की कुछ घड़ियाँ मुस्कायें,

गौरव गायें,
गाँधी आयें,
सुख छा जायें।

नवयुग के कोमल कंठों में
'जन-मन-गण' का नवल गान दो।

विजय वैजयन्ती लहराये
तेरी, विश्व-शिखर शृंगारी,
मानव की पूजा घर-घर हो
गुंजित हो जयकार तुम्हारी,

सबसे प्यारी,
जग से न्यारी,
नीति हमारी।

मंगल-दीप जलायें जग में,
मिले शान्ति, नित वर समान दो।
भारत माता, अभय-दान, दो॥

★

धरती का भगवान

कैसी रचना ! क्या विधान यह ! बोलो, भाग्य-विधाता,
धरती का भगवान आज अपनी झोली फैलाता !

—एक—

जिसके वक्ष पर चमक रहे हैं नभ में चाँद-सितारे,
जो हैं किसी हृदय के आँसू खोये प्यारे-प्यारे,
आज न जिसकी पूजा होती दुनियाँ के घर-घर में,
आज न जिसका परिचित कोई रहा हाय ! अम्बर में,
आसमान वालों से जिसका टूट गया है नाता !
धरती का भगवान आज अपनी झोली फैलाता !

—दो—

जिसकी भीगी झोली में संचित कुबेर का धन है,
जिसकी झोली में मानवता का सारा जीवन है
जिसकी वरद भुजाओं में है कल्पलता की क्षमता,
जिसकी छोटी झोली में अलका का नन्दन वन है,
आज भिखारी की झोली लेकर क्यों आता दाता !
धरती का भगवान आज अपनी झोली फैलाता !

—तीन—

जिसके छूने से बन जाती मिट्टी पल में सोना,
सरिताएँ बन रहीं आज उसका ही रोना धोना,
जिसके स्वेद-कणों की कीमत दुनियाँ आँक न पाती,
उसे न कोई आज चढ़ाता है फूलों का दोना,
कैसे इस धरती से दुख का भार सहा यह जाता !
धरती का भगवान आज अपनी झोली फैलाता !

—चार—

पत्थर के उन बड़े देवताओं से जिसे न समता
दुख की कुछ परवाह न जिसको सुख की तनिक न ममता
उन्हें मिली फूलों की माला, इसे कण्टकों का वन
इन दोनों के बीच सदा से फैली बड़ी विषमता
कृष्ण कहीं राधा से मिलकर अपना रास रचता
धरती का भगवान आज अपनी झोली फैलाता

कैसी रचना ! क्या विधान यह ! बोलो, भाग्य विधाता
धरती का भगवान आज अपनी झोली फैलाता

धीर-वीर

जो सदा खेलता रहता है
हँस-हँस कर असि के धारों से।
भय उसे कहाँ ललकारों से?

जिसके गर्जन पर एक बार
जाती ब्रह्मा की भृकुटि डोल,
हुंकार गगन-भेदी सुनकर
शंकर निज लेते नयन खोल,

वसुधा थर्राती जिसे देख,
थर्राती अंगारों वाली,
मुस्काती जिसके तेजों से
शत-शत शोणित धारों वाली

हँस-हँस कर जिसने खेला है
बाधा के भीषण ज्वारों से,
भय उसे कहाँ ललकारों से?

जिसकी साँसों के झोंके से
लहराता लहरों में सागर,
जिसके इंगित पर उठ-उठ कर
तांडव करता है नट-नागर,

पल रहा लक्ष्य की लपटों में
जो जलने का वरदान लिये,
निर्भीक चला रे, कौन पथिक
नवयुग का नव परिधान लिये !

जो पथ से विचलित हुआ नहीं
पगली पायल-झंकारों से,
भय उसे कहाँ ललकारों से ?

उसकी ही आँखों में युग का
इतिहास छिपा-सा रहता है,
उसके जीवन में ही जग का
मधुमास छिपा-सा रहता है,

उसकी मस्ती में छिपी कथा
है दुनियाँ के तूफानों की,
बज रही रागिनी अन्तर में
सन्निहित, विहग के गानों की,

नाता युग-युग का जुड़ा सदा
आया जिसका लाचारों से,
भय उसे कहाँ ललकारों से ?

चातक की तनिक न है चिन्ता;
चितवन की चित में चाह नहीं.
जीने की साध न जीवन में;
मरने की कुछ परवाह नहीं,

जो सत्य अहिंसा का प्रतीक,
लिखता जो विधि का स्वयं लेख,
उसके पद-चिह्नों पर चलती
सारी मानवता देख--देख,

जीवन-संगीत सुनाता जो
यौवन के उलझे तारों से,
भय उसे कहाँ ललकारों से ?

मानव की जय

ओ स्वतंत्रता के पुजारियो, 'जय स्वदेश' मत बोलो।
पत्थर के मन्दिर को, मानव, जय कह कर मत खोलो।

रण-चण्डिका पुकार रही है – जय हो तलवारों की,
जय स्वदेश, जय धरती माता, जय शोणित-धारों की,
कालिन्दी का स्वर कह उठता-जय वृषभानु-कुमारी,
प्रतिध्वनि विटप-लताओं की कहती–जय कृष्ण मुरारी,
पहलवान, बजरंगी की जय, ताल ठोंककर कहता;
शैव उधर भोले शंकर के भक्ति-भाव में बहता।

जब संसृति का स्वर कह उठता—जय जगअम्बे नारी,
'जनक--सुता की जय' मिथिला की कहती क्यारी-क्यारी,
कहा किसी के कातर स्वर ने-जय हो भाग्य-भवानी,
मोती-सा चू पड़ा, रसिक--पलकों से 'जय नूरानी,'
जिनसे मादक सरगम झड़ते विजय न उन तारों की,
जय उनकी, महिमा जानी जिनने स्वर--झंकारों की।

कहो न जय, सुरबाला की चिर चपल भृकुटि-वारणों की,
कोयल की जय, किन्तु न जय उसके पंचम तानों की,
जिसमें नव सभ्यता, नई संस्कृति का नवल समन्वय-
मनु का वह मोहक स्वरुप ! प्रिय, बोलो- 'मानव की जय !'
मानव-मानव की जय हो, तो वसुधा हो मंगल मय
इसीलिये हे विश्व ! आज तुम बोलो मानव की जय !'

★

चल पड़े पाँव

सेवा के सरगम छिड़ हृदय के तारों पर।
चल पड़े पाँव सहसा गाँवों के द्वारों पर।

चल पड़े पाँव, अम्बर ने जब अभिशाप दिये,
आँखों में सागर दिये, हृदय में टीस दिये,
घासों की जातीं गढ़ी गोटियाँ गाँवों में,
स्वातंत्र्य-समर में क्या न उन्होंने शीश दिये?

पत्थर से टकराकर मुड़-मुड़ कर आती-सी
सुन पड़ी हूक उनकी निर्झरिणी-धारों पर।
चल पड़े पाँव सहसा गाँवों के द्वारों पर।

गाँवों की गलियों में देखा भगवानों को,
गाँवों में देखा सरल-सरल मुस्कानों को,
मुरझाया-सा दिल लिये शहर से गाँवों में
आते देखा मानवता के मेहमानों को,

गेहूँ की गोरी बाँहें लिपट गईं तन से
गूंजी शहनाई दिल के बन्दनवारों पर।
चल पड़े पाँव सहसा गाँवों के द्वारों पर।

है अभी मनोमालिन्य शेष कुछ गाँवों में,
पड़ रहे अभी भी छाले उनके पाँवों में,
रवि की किरणें झोपड़ियों में हैं झाँक रहीं,
बरसात सिसक जाती है उनके ठाँवों में,

भूतल को सजा-सजा कर स्वर्ग बनाने को
चल पड़े पाँव बापू के मृदुल इशारों पर।
चल पड़े पाँव सहसा गाँवों के द्वारों पर।

चल पड़े, कि सिंहासन गिरिवर के डोल उठे,
सागर भी अपने तुमुल स्वरों में बोल उठे,
नवयुग के नव निर्माता का आगमन देख
वसुधा के कण-कण क्षण-क्षण कर कल्लोल उठे,

मखमल पर चलकर ही रुकने का नाम न लें,
चलना है बाकी अभी ज्वलित अंगारों पर।
चल पड़े पाँव सहसा गाँवों के द्वारों पर।

गाँव

हर गाँव विश्व का राजा है।
गाँवों में ही बजता आया
युग-युग से मंगल-बाजा है॥

नन्हीं-सी 'बस्ती' वसुधा की
हर नगर-नगर की माता है,
यह गाँव हमारे जीवन के
सुख-दुख का भाग्य-विधाता है,

जीता हर मानव शाम-सुब्ह
खेतों के नई बहारों में,
पलती हैं जिनकी आशाएँ
सावन की मधुर फुहारों में,

यह भारत का 'रेशमी नगर'
दिल्ली हो चली सयानी है,
उसके अंचल में छिपी हुई
गाँवों की मधुर जवानी है,

नभ-चुम्बी उन प्रासादों में
अब छिन्न-भिन्न मानवता है,
जिसमें आ-आकर झाँक रही
चुपके-चुपके दानवता है,

'गाँवों की ओर पुनः लौटो,'
इस युग का यही तकाजा है।
हर गाँव विश्व का राजा है॥

गाँवों के फूलों से जिनका
इतिहास आज है लिखा हुआ,
चमके वे, जिनके जीवन में
'मधुमास' आज है लिखा हुआ,

सिसकियाँ भर रहे हैं कुछ तो
मिट्टी की इन दीवारों में,
लहराते हैं जिनके आँसू
ये बाढ़ बने घर—द्वारों में,

सभ्यता यहीं से जीवन की
जग में फैलायी जाती है,
सारी दुनियाँ जग-मग करती
वह ज्योति जलायी जाती है,

इन जीर्ण-शीर्ण शालाओं में
जो गग-रंग की रेखा है,
ढूँढ़ा जीवन-भर बहुत, मगर
परियों ने जिसे न देखा है,

मिल रहा यहीं से दुनियाँ को
हर जीवन का रस ताजा है।
हर गाँव विश्व का राजा है॥

लेखनी है यह नये संसार की

कौन यह रूठी हुई अभिसारिका !
कौन यह बाला किसी प्रासाद की !
आँसुओं को आँख में माला लिये
बन गई तस्वीर किसकी याद की !

यह न कोई रे, कली आकाश की
यह किसी के दीप की झिल-मिल शिखा,
जो भटके मंजिलों से दूर हैं
यह बुझेगी रास्ता उनको दिखा।

जो भटकती जिन्दगी को साज दे
यह नई लाली नये सिन्दूर की,
जो सदा भीगी रही है आज तक
आत्मा है यह किसी मजबूर की,

मानवों को ही जिलाने के लिये
कह रही हर रोज यह नूतन कथा,
कौन निर्मोही समझता है यहाँ
दर्द से भीगी हुई दिल की व्यथा !

साथ तूफानी कलेजे को लिये
कह रही नूतन कथा अनुराग की,
सिंह-सा जिसका कभी चीत्कार सुन
आत्मा भी काँप उठती आग की !

कर रही आराधना निर्जीव-सी
कौन यह भोली किशोरी प्यार की !
लेखनी है यह नये संसार की।

फूँकती नव कंठ में नव रागिनी
जिन्दगी में जो नया तूफान दे,
बाँटती है विश्व को हर रोज जो
आँसुओं में भी नई मुस्कान दे,

सौंप धीमी देख, ला आकाश से
जो जिला देती सुधा जग को पिला,
ला कभी पाताल से गंगा तुरत
जो हँसा देती सरोरुह को खिला,

साथ रख प्रिय को बना देती अमर,
कौन-सी ऐसी अनोखी प्रियतमा!
घूँट, दो, जिसका शराबी दे बना
कौन-सा रसकोष वह उर में जमा!

खींचती हर रोज जो खाका नया
इस नये युग के नये भगवान का,
यह धरा बनती रही है आजतक
पृष्ट उसके सुनहले अरमान का,

यह धरा पर किस गगन की चाँदनी !
किस हृदय की, यह कलम झंकार है !
जीत, जो बाजी, गई तलवार से
लेखकों की यह नई सरकार है।

जो जला देती क्षणों में द्वेष को
यह दहकती रोशनी अंगार की।
लेखनी है यह नये संसार की।

इन्हें न कह मिट्टी का बेटा

इन्हें न कह मिट्टी का बेटा, भूतल के भगवान यही हैं।
मानवता के प्रथम पुजारी जीवित मनु-सन्तान यही हैं॥

इनके पाँवों के पीछे सारा संसार चला करता है,
इनके मधुर इशारों में जीवन का ज्वार पला करता है,
इनकी मुस्कानों में ही तो धरती का गुण-गान छिपा है,
इनकी साँसों के झोंके में मानवता का प्राण छिपा है,
नवयुग का कल्याण छिपा है,

नई रश्मियों के आरोही, नवयुग के दिनमान यही हैं।
इन्हें न कह मिट्टी का बेटा, भूतल के भगवान यही हैं॥

कठिन तपस्वी जेठ मास के, वर्षा हों, गिरते हों पाले,
सींच धरा को स्वेद-कणों से हैं सोना उपजाने वाले,
स्वर्ण-राशि इनकी ही लेकर हुए करोड़ों खाने वाले;
मगर किसी ने गिना कि कितने हाथों में इनके हैं छाले ?
पाँवों में इनके हैं छाले ?

बाधाओं में हँसने वाले पहले पुरुष महान यही हैं।
इन्हें न कह मिट्टी का बेटा, भूतल के भगवान यही हैं॥

इनके ही तो दाने खाकर कितने पुरुष हुए अवतारी,
भूख-प्यास के बिना कहीं भी रुक जा सकती जिनकी गाड़ी,
उनको सुमन-सुसज्जित रथ की चढ़ने को मिल गयी सवारी,
भाग्य-हीन इन भगवानों को 'दो बैलों की टूटी गाड़ी;'
पर प्राणों से बढ़कर प्यारी,

झूम रहे हरियाली बनकर धरती के अरमान यही हैं।
इन्हें न कह मिट्टी का बेटा, भूतल के भगवान यही हैं॥

बापू का सपना

बापू ने देखा कुछ पहले 'राम-राज' का सपना।
लगे बसाने उसके बल पर 'राम-राज' हम अपना॥
'ग्रामराज' हम अपना॥

गूँज उठा मानव-कंठों में 'ग्रामराज' का नारा,
फूट पड़ी अन्तर-अन्तर से प्रेम-भाव की धारा,
द्रोह-दंभ से दूर, मिलन की यह वेला है आई,
दाव-पेच को छोड़ गले से मिलते भाई-भाई,

पीना यहाँ हराम हो रहा मदिरा, दारू-ताड़ी,
यह समाज होगा आजीवन बापू का आभारी,
सत्य-शान्ति को लगे समझने हम प्राणों से प्यारा,
गूँज उठा मानव-कंठों में ग्राम राज का नारा,

हमने सीखा सर्वोदय की माला लेकर जपना।
बापू ने देखा कुछ पहले 'रामराज' का सपना॥

नगरों की तो बीत चली, आई गाँवों की बारी,
सुरपुर-सी लद गई गाँव की फल-फूलों से क्यारी,
फैलाते गाँवों में हम अभिनव समाज की शिक्षा,
स्वावलम्ब की हमें मिली है यह बापू से दीक्षा,
हम प्रचार करते गाँवों में नव प्रसार-सेवा का,
स्वाद मधुर सचमुच है कितना सेवा के मेवा का!
देती है सहयोग हमें दिल से समाज की नारी,
नगरों की तो बीत चली, आई गाँवों की बारी,

अब न न्याय के लिए शहर में होगा हमें तड़पना,
बापू ने देखा कुछ पहले 'रामराज' का सपना।

संरक्षण कर रहे आज हम नव गृह-उद्योगों का,
है उपयोग बड़ा इस युग में पड़े हुए लोगों का,
जन ही है आधार शक्ति का, शक्ति शिला जीवन की,
मानव के मन की कर्मठता मंजूषा है धन की,
श्रम का कितना है महत्व, बतलाती श्रम की टोली,
हमें जलानी है कुरीतियों की मिल - जुल कर होली,
रहा न अब गाँवों में भी भय संक्रामक रोगों का,
संरक्षण कर रहे आज हम नव गृह-उद्योगों का,

अभी हमें है बिघ्न-भट्टियों में सोने-सा तपना ।
बापू ने देखा कुछ पहले 'राम - राज' का सपना ॥

सुधा पिलाती जिस धरती को हँसकर गंगा मैया,
डूब न जाये, बापू ने सोचा, भारत की नैया,
नई सड़क, नव तट-बन्धों को कहाँ ग्राम ने देखा ?
बदल रही इन ग्राम-वासियों के भाग्यों की रेखा,
अपने ही हाथों में है अपने शासन की सत्ता,
देना व्यर्थ न अब हमको है झूठ-मूठ का भत्ता,
दूध पिलायेंगी जी-भर कर अब गाँवों की गैया,
सुधा पिलाती जिस धरती को हँस कर गंगा मैया।

अब न किसी के आगे हमको होगा कभी कलपना।
बापू ने देखा कुछ पहले 'रामराज' का सपना॥

श्रद्धा के फूल

है आज चतुर्दिक लगी आग ।
ओ, सोये बापू, जाग, जाग !!

था वह युग भी जब थी मुखरित
मानवता की प्रत्येक शिरा,
था मस्ती में तृण-तृण जग का,
गाती पुलकित हो विश्व - गिरा,

जगती का आनन म्लान हुआ,
खिच गई कालिमा की रेखा,
मानवता के मन - मन्दिर में
सबने आसन्न प्रलय देखा,

अपने हाथों हमने खोया
अपना प्रियतम, अपना सुहाग,
ओ, सोये बापू, जाग, जाग ।

यह प्रलय नहीं, रे महाप्रलय !
सरिताएँ सूख चलीं सारी !
हिम-अंचल से भी निकल रहीं
धू-धू करती कुछ चिनगारी !

नर क पशाचिक कर्मों से
जब-जब आती जग में आँधी,
लेकर सत्वर अवतार नवल
आता वसुधा - वैभव गाँधी,

किसने असमय में ही काटा
यह हरा-भरा पल्लवित बाग !
ओ, सोये बापू, जाग, जाग ।

कुछ विटप-वृन्त से विहग-नीड़
गिर रहे हाय ! रे, भूतल पर,
हैं धधक रहीं कुछ प्रलय-शिखा
चंचल वन आज उदधि-जल पर !

है सुरभि नहीं अब पुष्पों में,
कंठों में कवि के गान कहाँ ?
कह रहीं सिसकियाँ भूतल की—
है दीनों का भगवान कहाँ ?

खेली न जायगी अब होली,
गाया न जायगा मधुर फाग,
ओ, सोये बापू, जाग, जाग !

देकर अमृत का महादान
थे काल-कूट पीने वाले,
पद-चिन्हों पर चल सके न हम
हो गये हाय ! खोनेवाले,

अंकुरित, पल्लवित होकर जब
आजादी का शुभ सुमन खिला,
वह मधुप नहीं रे, मधुवन में,
हा ! उसे कहाँ मकरन्द मिला !

भारतवासी के जीवन में
यह लगा भाल पर अमिट दाग,
ओ, सोये बापू, जाग, जाग!

बापू की मीठी वाणी में
जादू के थे कुछ भरे राग,
जिसको सुनकर बुझ जाती थी
विद्वेष-भरी प्रज्ज्वलित आग,

जब तुम्हें न पहचाना भ्रमवश
पाखण्डी दुनियाँ वालों ने;
तब तुम्हें बुलाया आतुर हो
उन आसमान के लालों ने

ललकार रहीं भव-बाधायें,
फुफकार रहा है शेषनाग,
ओ, सोये बापू, जाग, जाग!

मासूमनगर

मासूमनगर का भोलापन !
मासूमनगर का भोलापन !!

सूरज आता है प्राची से
किरणों का स्वर्ण-विहान लिये,
कलिकायें खिल-खिल जाती हैं
हँसने का नित वरदान लिये,

कुछ विहग-बाल उड़ जाते हैं
कंठों में मीठे गान लिये,
आती है मधुकर की टोली
निज जीवन में तूफान लिये,

फूलों की सेज कहीं पर है;
हैं कहीं पाँवड़े किसलय के,
घूमी जा सकती गली--गली
रजनी में विना किसी भय के,

कुछ हरी खेतियाँ झूम-झूम
कर मस्ती में लहराती हैं,
मन के नीड़ों से उड़-उड़ कर
भावों की कोयल गाती हैं,

इसके बसने का दुनियाँ में
मिलता कोई इतिहास नहीं,
नागरिक सदा रहते आये
हैं यहाँ किसी के दास नहीं,

इस नगरी में बसने वाले
कितने अच्छे, भोले-भाले,
अपनी आनों की बाजी पर
हँसते-हँसते मरने वाले,

चोरी-चांडाली का न नाम,
है यहाँ अन्धविश्वास नहीं,
कोई न नृपति इस नगरी में;
नर यहाँ छीलते घास नहीं,

पीयूष पिला, नागरिक तुम्हें,
हैं आप गरल पीने वाले,
भारत माता का चूम चरण
खेती करके जीने वाले,

प्राणी के पावन अन्तर में
बह रही प्रेम की धारा है,
'ईमान' यहाँ के मानव का
प्रणों से बढ़कर प्यारा है,

इस नगरी में पत्थर के वे
भगवान न पूजे जाते हैं,
पूंजी--पतियों के, यहाँ कभी
अभिमान न पूजे जाते हैं,

बच्चे-बच्चे हर घड़ी खड़े-
रहते समाज की सेवा में,
कर्त्तव्यों में जो है मिठास
है नहीं मिठाई-मेवा में,

'सच्चा मानव बनना होगा,'
उनके कंठों के गायन हैं,
जीवन उनके बतलाते हैं-
'सच्चे नर ही नारायण हैं।'

यह नगरी हँसती रहती है,
हँसता रहता इसका कण-कण,
मासूमनगर का भोलापन !
मासूमनगर का भोलापन !!

ग्रामनेता

एक शक्ति चाहिए
एक व्यक्ति चाहिए

स्वार्थ-भाव से कि जो विरक्त हो,
जो समाज का अनन्य भक्त हो,
हों शरीर पर अनेक झुर्रियाँ;
किन्तु देह में नवीन रक्त हो,

सेब-से ललाट लाल-लाल हों,
याकि हो चले सफेद बाल हों,
देह भीमकाय, याकि तुच्छ हों;
किन्तु उर समुद्र-से विशाल हों,

जो बिगुल विकास का बजा सके
वह महान एक व्यक्ति चाहिए
एक शक्ति चाहिए।

जो स्वदेश के सुधार के लिये
गढ़ सके नई-नई कहानियाँ,
ले नया मशाल खड्ग-धार पर
चल सकें मचल-मचल जवानियाँ

हो मनुष्यता, हृदय महान हो,
हाथ में लिये नहीं कमान हो,
भावना पवित्र, भक्ति-पूर्ण हो;
और जानता जिसे जहान हो,

बन्धु को भी जो कि दे सजा सके
वह महान एक व्यक्ति चाहिए
एक शक्ति चाहिए ।

एक कर सके अगर समय पड़े
जो जमीन और आसमान को,
देश के विपत्ति-काल में कि जो
रख सके हथेलियों में जान को,

विश्व के प्रचंड आर्तनाद पर
मूक रह सकें न मर्म-वाणियाँ,
और अन्त में कि उस मजार पर
दीप जगमगा सकें निशानियाँ,

व्योम-दीप को कि जो लजा सके
वह महान एक व्यक्ति चाहिए—
एक शक्ति चाहिए।

लोक में सदा समान भाव हो,
हर घड़ी नया, नया सुझाव हो,
हो न मित्रता, नहीं दुराव हो,
और वाग्बाण से न घाव हो,

शान्ति की सुधा सदा बरस पड़े
और सत्य का अखण्ड राज हो,
बन्धु-बन्धु में स्वदेश-प्रेम हो,
द्वेष-दंभ से रहित समाज हो,

स्वर्ग-सा समाज को सजा सके
वह महान एक व्यक्ति चाहिए—
एक शक्ति चाहिए।

भोले-भाले किसान

गा रहा गगन में है कोई
तेरी गौरव - गरिमा महान।
हे चिर भोले-भाले किसान!

मादक कंठों में गूंज रहा
नवयुग की स्वर-लहरी पुनीत,
तेरे पावन पद चूम रहे
लेकर अँगड़ाई हार-जीत,

तेरी मंजुल मुस्कानों में
पलता जग का सारा समाज,
तेरा कुदाल पर ही सच्चा
मानव कर सकता आज नाज,

तुम हुए तपस्वी आज निरत
शत-शत प्राणों के एक प्राण।
हे चिर भोले-भाले किसान!

फूलों-सी बूँदें गोल-गोल
जब आता ले सावन-भादों,
अपने प्यारे धनखेतों में
तुम बने मस्त करते कादो,

तेरे खलिहानों में चमका
मानव का भाग्य-सितारा है,
यह निशा न भले तुम्हारी हो;
आगे का दिवस तुम्हारा है,

अपनी झोली में लिए स्नेह
दे रहे विश्व को दीप-दान,
हे चिर भोले-भाले किसान!

बैशाख कभी फिर आता है
लेकर प्रचंड-सा अनल-ज्वाल,
प्राणों के पल्लव झुलस रहे
सूखी सरिता, जल रहा ताल,

आ जाती है प्रलयंकारी
जब बाढ़ लिये सागर अथाह,
साहस के भय से अन्तर में
टिक पाती क्षण-भर नहीं आह,

यह एकाकी है कौन खड़ा
फैलाये साहस का वितान!
हे चिर भोले-भाले किसान!

जिनको न मेनका की चितवन,
जिनको अलका की नहीं छाँह;
वरदान विधाता का उनको
गोरे गेहूँ की मृदुल बाँह,

हे मानवता के प्रथम पथिक!
हे वसुधा के वैभव विशेष!
धरती है जिसकी कंचन की
वह सचमुच कितना रम्य देश!

हे इस धरती के कलाकार!
तेरा जीवन उज्ज्वल महान!
हे चिर भोले-भाले किसान!

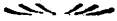

नव वर्ष

नूतन भावों में पगा हुआ उत्कर्ष मिले !
साथी, जी-भर जी लेने को नव वर्ष मिले !

पाकर प्रियतम का महा प्रणय
पगली बन गई प्रिया प्राची,
घूँघट-पट झटपट हटा-हटा
खुलकर मुस्काती है प्राची,

रवि - बाल रश्मियाँ मुस्कायी
नूतन आशा के तारों पर,
हैं थिरक रही ये विहगावलि
उनकी कोमल झंकारों पर,

बजती है मीठी शहनाई
हर दिल के बन्दनवारों पर,
हैं लुटा रहे दिल अरुण-तरुण
अपनी प्यारी के प्यारों पर,

हर कली-कली फुलवारी की
सज-धज कर आज बनी दुलहिन,
रोने की वेला बीत चली
अब आये मुस्काने के दिन,

जीवन-घन सरस बनाने को संघर्ष मिले!
साथी, जी-भर जी लेने को नव वर्ष मिले!

हर रोज खिले उर-अन्तर में
भावों के नवल अमल शतदल,
अपना पग दुनियाँ बढ़ा सके
भारत माँ का लेकर सम्बल,

यह नई घड़ी है जीने की
यह नया पृष्ट है जीवन का,
इस नये वर्ष के प्राणी को
अभिनन्दन आज खिले मन का,

निज जन्म-भूमि को चिर वन्दन,
बन्दन है कोटि शहीदों को,
नूतन होली को नमस्कार;
है नमस्कार नव 'ईदों' को,

पी नये वर्ष की नई सुधा
काँटों को फूल पुकारे जा,
नित नये यातना - शूलों से
जीवन को सदा सँवारे जा,

बिछुड़ों से पुनः गले मिलने को हर्ष मिले !

★

अपनी बात

पथ का कण-कण मैं चूम-चूम वरदान दिया करता हूँ।
आशा से रहित जवानी को युग-गान दिया करता हूँ॥

फूलों से, कलियों से, काँटों से मैंने मेल किया है,
शोणित से भी, अंगारों से हँस-हँस कर खेल किया है,
लहरों पर मुस्काना सीखा, सीखा गिरि पर चढ़ना भी,
टकरा-टकरा कर पत्थर से पीड़ा को झेल लिया है,
मत पूछो, कितनी भरी पड़ी है और चीख अन्तर में,
प्राणों में कैसी आग लगी है, हाय! जलन स्वर-स्वर में,

दुर्वह पीड़ा का भार लिये मैं पथ पर बढ़ता जाता,
संतप्त दलित मानव को नित नव मान दिया करता हूँ।

मेरी गति में आँधी औ' हाहाकर चला करता है,
मेरी मस्ती में पल-पल सागर ज्वार पला करता है,
मन होता है क्षण-भर में मैं पर्वत को तोड़ गिराऊँ,
पाताल दबाकर चरणों में कुछ सुधा-कलश भर लाऊँ,
उँगली पर होती है इच्छा अम्बर को आज उठा लूँ
इतने अरमान भरे हैं, फिर कैसे मैं आग बुझा लूँ ?

धू-धू कर जलतीचिता हाय ! उसमें पलता रहता हूँ,
पर क्षुब्ध पतित प्राणी को जीवन-दान दिया करता हूँ।

लहराती आकर होठों पर अलसाई मस्त जवानी,
अँगड़ाई लेती अन्तर में युग-युग की मौन कहानी,
मुझसे नित मिलने आते हैं भावों के राजा-रानी,
कागज के पन्नों में फूँका करता मैं युग की वाणी,
मुझसे लड़ने में सकुचाते हैं, बड़े-बड़े नृप हारे,
सचमुच धरती का भाग्य बँधा है मेरे भाग्य-सहारे,

सूने मन्दिर वालों को मैं भगवान दिया करता हूँ,
आशा से रहित जवानी को युग-गान दिया करता हूँ।

जवानी

गुलजार जवानी का आंगन!

कदली-किसलय से तन मृदुतर,
जीवन - सरवर का शुचि सम्बर,
प्राची की पहली लाली में,
कुसुमों की कंकन प्याली में,
मधु में कुंकुम केशर बनकर
बहती रहती अमृत - धारा।

निर्भीक समर में तू अविचल,

तोपों के गोले खाने को,
अरमानों पर मिट जाने को,
हैं थर्राते लखकर जल-थल,
हो जाता जग में उथल-पुथल!
प्रलयंकारी छवि तव लखकर
होते चंचल अम्बर - तारा!

जीवन-वीणा के तार सुभग!

तू हिमकर हो, या हो सविता,
जीवन की भाव-भरी कविता,
अलका की केशर-क्यारी-सी,
बहुरंगी तितली प्यारी - सी,
निष्ठुर क्षण भंगुरता छवि को
पर, दे जाती शाश्वत कारा!

हे जीवन की वारिद-माला!

कुछ दूर क्षितिज-पट में जाकर
भरती अन्तर में प्रेम-लहर,
जीवन को सरस बना जाती,
अनुपम अमृत बरसा जाती,
तू भीषण प्रलय-अशनिकाहो,
हे कोमलतम! मुक्ता-गारा!

आशा

तू कैसे छान सकी आशा,
रति से चितवन का नया तीर ?
दिल के मुरझाये घावों में
भर आयी फिर से नई पीर,

नित नई वेदना जाग उठी,
उठ रही हृदय में नव पुकार,
दिल के इन रूखे रेतों में
सहसा बह निकले प्रेम-धार,

मदमाती शेखी से चलना
सिखलाया तुझको, बता कौन ?
घायल कर बढ़ते ही जाना
कैसे सीखा, क्यों हुई मौन ?

आँखों की भाषा में तूने
भरली कैसी ताकत महान!
तेरी ही पलकें तो बनतीं
शत-शत प्राणों के एक प्राण,

जाती जिस ओर मचलकर तू
खुल जाता छवि का उधर द्वार,
टूटी वीणा के भी सहसा
जुटकर बजना चाहते तार,

ऊषा की तरुणी प्रथम किरण
अरुणाई का नव बना हार,
कोमल शतदल-से गालों पर
करती निर्भय शाश्वत बिहार,

जब चंचरीक-से चिकुर-जाल
वेणी बन जाते एक ओर,
नभ में मुस्काता चाँद देख
कितने किशोर बनते चकोर,

चोटी बन सरस मधुप, पीती
कोमल कटि - कलिका का पराग,
भरतीं मद-सुरा पलक-घट में
अलसाई आँखें जाग - जाग,

कसमसा रहा अल्हड़ यौवन
चोली का बन मोहक उभार,
साँसों के झोंके से उठता
पल-पल प्याले में प्रबल ज्वार,

आशा, तेरी अभिलाषा में
सीमित युग-युग की हार-जीत,
आँखों की रंगत कह जाती
कैसे कटता आया अतीत,

तू सचमुच ही करती आशा,
जीवन की ज्वाला सदा शान्त,
पर आशा की ही आशा में
क्यों जीवन बन जाता दुखान्त ?

विरह-गीत

आज पुलकित विश्व, प्रेयसि !
जग रहा जग स्वप्न त्यागे,
किन्तु क्यों मेरे हृदय में
स्वप्न - स्वर - संधान जागे ?

वेदना का रंग लेकर,
ले प्रणय की नव कहानी,
प्यार का इतिहास लेकर
आ गया मधुमास, रानी !

देव—बालायें प्रतीक्षा—
में मधुर बंशी बजातीं,
दूर मानव की पलक से
दीप तारों के सजातीं,

ले विरह अंगड़ाइयाँ
जाती मिलन-मन्दिर सजाने,
पोंछ आँसू, आज रूठे
देव को फिर से मनाने,

भर हवा अरमान उर में
प्रेम की शय्या सँवारे,
ढूँढ़ती उन्मादिनी हो—
हैं कहाँ प्रियतम हमारे ?

यह घड़ी सुख की, प्रिये !
यह है प्रणय की पुण्य वेला !
किन्तु इस मधुमय प्रहर में
तुम अकेली, मैं अकेला !

कह रहीं जग को विहँसकर
आज मंजरियाँ सुहानी—
'मोल वह लेता जमाना
मिल गई जिसको जवानी।'

कौन सुन सकता, प्रिये!
उरकी व्यथा किसको सुनाऊँ?
गा रहा है विश्व, पर
कैसे मिलन के गीत गाऊँ?

ले चले रस-कोष उर का
मैं जलन कैसे बुझाऊँ?
है नहीं भगवान, फिर मैं
आरती किसकी सजाऊँ?

हँस रहा तन का चमन,
उर की कली, पर रो रही है,
आज अभिलाषा बेचारी
जाग कर भी सो रही है!

★

कली और मधुकर

कलियों से पूछा, मधुकर ने, 'बोलो तो आज प्रिये !
क्यों इस दुनियाँ में शोभा का संसार सजा लायी ?

अधरों पर लिये गुलाबी, मधु का पारावार लिये,
हल्का ही जो लगता ऐसा यौवन का भार लिये,
डालों पर बैठे मौन, अरुण से खेल रही होली,
शतरंगों में है रंगी हुई तेरी भीगी चोली,

जो हिमकर की शीतलता देकर आग लगा डाले,
उपहार बनाकर क्यों ऐसा अंगार सजा लायी ?
क्यों इस दुनियाँ में शोभा का संसार सजा लायी ?

मदमाती तेरी छटा देख, मानव भोला - भाला
पीने को हो उठता आतुर यह अधरों का प्याला,
आतुर हो उठता, क्षीण - बीन के तार सजाने को,
आतुर होता, बाँहें पसार पल - भर अपनाने को,

क्यों पल-भर की पहचान तुम्हारी शूल बने दिल के,
क्यों सुधा-पात्र में विष का यों भंडार सजा लायी !
क्यों इस दुनियाँ में शोभा का संसार सजा लायी !

तेरे सौरभ ने किया विश्व पर क्या जादू-टोना !
तेरी मुस्कानों ने सिखलाया जीवन-भर रोना,
पाने की पगली चाहों में सीखा तन का खोना,
कुछ ऐसी लगन लगी जिससे होता हराम सोना,

जो जिला-जिलाकर मारे, मुँह से आह नहीं निकले,
अपनी पलकों में क्यों ऐसी तलवार सजा लायी !
क्यों इस दुनियाँ में शोभा का संसार सजा लायी,

वियोगिनी राधा

आज न जानें, क्यों राधा से
रूठकर माखनचोर गये !
राधा की गलियों में मोहन,
तुम क्यों आना छोड़ गये !

रोती हैं ब्रज की बालायें,
रोते हैं सब ब्रजवासी,
लौट पुनः आओ, प्रिय, ब्रज में
हे चिर अव्यय, अविनाशी !
ब्रज की बगिया को तजकर क्यों
वनफूलों की ओर गये !
आज न जानें, क्यों राधा से
रूठकर माखनचोर गये !

तेरे पत्थर-दिल पर गिड़ कर
अन्तर चकनाचूर हुआ,
रह-रह कर तुझसे मिलने को
फिर भी क्यों मजबूर हुआ!
मेरी स्नेहमयी दुनियाँ को
आँधी-सा झिकझोर गये!
आज न जानें, क्यों राधा से
रूठकर माखनचोर गये!

कैसे, कहो, बुझाऊँ मोहन!
अपनी प्रेम-पिपासा को?
कैसे ठीक सुलाऊँ आकुल
अन्तर की अभिलाषा को?
जोड़ा किस कुंठित से नाता,
मुझसे नाता तोड़ गये!
आज न जानें, क्यों राधा से
रूठकर माखनचोर गये!

कौन बुलायेगा अब जाकर
मेरे रास - बिहारी को !
कौन रिझायेगा गा-गा कर
प्रेम - भरे भंडारी को !
रोती राधा के जीवन को
छोड़ कहीं मनमोर गये !
आज न जानें, क्यों राधा से
रूठकर माखनचोर गये !

याद तुम्हारी

पा अमर आश्वासनों का भास
आज जीवन में हुआ नव प्रात,
लख प्रणय की पुण्य मधु वेला
खिल उठे स्वर्णिम जलज के गात,

छा गया उर में नवल उल्लास
हो गई मेरी निराली जीत,
बीन ले बैठी विभा सज साज,
गा रहा तृण-तृण पुलक के गीत;
पर न आये आज मन के मीत!

तुम बनो मिट्टी, मिलन की आश-
ले बनूँगा मैं तुम्हारी धूल।
मैं न सकता सजनि! तुमको भूल॥

राग के शुचि रम्य रथ पर बैठ
खेलते शुभ रश्मियों के जाल,
आज लख खग-वृन्द का आनन्द
मुस्कुराते उर - उषा के गाल !

प्राण में भर कर नये आह्लाद
नाचते, गाते कहीं मकरन्द,
प्यार के बहते पवन हैं शान्त
फूटते सहसा हृदय के छन्द,
हाय ! तुम किन सींकचों में बन्द !

तू सुनिर्मल सुर-सरित का नीर,
मैं मनोहर उस सरित का कूल।
मैं न सकता सजनि ! तुमको भूल ॥

आ गया ऋतुपति, प्रिये ! मधुमास
तुम बनो मंजुल कली या फूल,
वृन्त पर बैठे हरित दल बीच
प्रेम से हँसती रहो नित झूल,

भक्ति से नभ के सभी नक्षत्र
आरती करते तुम्हारी आज,
ले प्रणय - पिचकारियाँ अरुणिम
खेलता दिनकर द्रुमों से फाग,
जाग, ओ सोई कुमारी जाग !

छू न पायें कलुष जग के हाथ
रोक दूँगा मैं उन्हें बन शूल ।
मैं न सकता सजनि ! तुमको भूल ॥

★

परदेशी पाहुन आये

जब आसमान में उमड़-घुमड़ कर काले बादल छाये
तब एक दिवस सपना बनकर परदेशी पाहुन आये।

दिनभर तो बरस गईं रसकी वे बूँदें प्यारी-प्यारी,
रह गईं रिझाती सदा मुझे कलियाँ दे-दे किलकारी,
थी सराबोर हो गई रंग में फूलों की हर क्यारी,

रस के छींटे ये बरस-बरस बुझती ज्वाला सुलगाये,
तब चुपके से सपना बनकर परदेशी पाहुन आये।

फिर लगीं पवन का चुम्बन पाकर वल्लरियाँ मुस्काने,
ये विहग-बाल भी लगे सुनाने अपने नये तराने,
बस शमा जहाँ जल गई कि जलने लगे वहाँ परवाने,

फूलों की मस्ती, मोर-नृत्य पल-भर भी नहीं सुहाये,
बस, इसीलिये सपना बनकर परदेशी पाहुन आये।

आँगन में बरस रही थीं रिम-झिम सावन की बरसातें,
कानों में गूँज रहीं रह-रह साजन की बीती बातें,
क्या उन्हें पता, कैसी होतीं विरहिन की काली रातें ?

करवटें बदल कर रात कटी, पलकों में चैन न आये,
मुझसे मिलने सपना बनकर परदेशी पाहुन आये।

मेरे कानों में सहसा कोई भीषण स्वर लहराया,
पुष्पक विमान फिर सजा-सजाया मेरे सम्मुख आया,
दो घड़ी न बीतीं और किसी ने तन मेरा सहलाया,

मैं बाट निहार रही थी जिसकी चितवन-सेज बिछाये,
मुझसे मिलने सपना बनकर परदेशी पाहुन आये।

पहुँचे, सहसा खुल गये हृदय के चुपके से दरवाजे,
मैं मौन एकटक खड़ी रही आरती सजन की साजे,
खिल पड़े हृदय में फूल भावनाओं के ताजे-ताजे,

आँखों में मन के दीप जले, फिर रोम-रोम मुस्काये,
मुझसे मिलने सपना बनकर परदेशी पाहुन आये।

आ गये अचानक यह कैसे मेरे मधुवन के माली!
गालों पर खेल रही थी जिनके, उषा-किरण मतवाली,
था हार अछूता और हाथ में छलक रही थी प्याली,

वे मेरी प्यास मिटाने को पीयूष चुराकर लाये,
चुपके-चुपके सपना बनकर परदेशी पाहुन आये।

हम दोनों हुए सवार कि रथ वह नभ में उड़ा अकेला,
आयी जीवन में महा मधुर यह महा मिलन की वेला,
लगता जिसमें आकुल अरमानों का अति सुन्दर मेला,

हम दोनों ने भी जीवन में कुछ सुख के बेल लगाये,
मुझसे मिलने सपना बनकर परदेशी पाहुन आये।

रथ उड़ा जा रहा नील गगन में सुध-बुध सभी बिसारे,
हम झूम रहे थे अमृत पी-पीकर मस्ती के मारे,
क्या हुआ! गिरा रथ, हुआ गगन के पहिआ एक किनारे!

पलकें खुल गईं अचानक रथ ने ज्योंही धक्के खाये,
मुझसे मिलने सपना बनकर परदेशी पाहुन आये।

हो गई राख थीं जल-जलकर मन की मनहर फुलझरियाँ,
सपना बनकर सो चुकी हमारे जीवन की थीं घड़ियाँ,
थीं सता रही मुझको रह-रह अपने भावों की लड़ियाँ,

सपनों के वैभव आज तलक क्या काम किसी के आये?
मुझसे मिलने सपना बनकर परदेशी पाहुन आये।

क्या किया विधाता ने, यह कैसी बना यहाँ दी जोड़ी!
चँदा तो नभ में दूर, तड़पती भू पर कहीं चकोरी!
आँखें कर लेती चार चकोरी फिर भी चोरी-चोरी,

जब चाँद क्षितिज के पार गया क्या होता शोर मचाये,
मुझसे मिलने सपना बनकर परदेशी पाहुन आये।

कल्पने !

गा मधुर संसारवाली,
चूमती कोमल कपोलों को विभा की मंजु लाली,
गा मधुर संसारवाली ।

अब न भाती है तुम्हें क्या
यह सुभग संध्या सुहानी ?
क्या प्रणय की छा गई है
कंठ में कोई कहानी !
(याद भर जिसकी निशानी)
क्या प्रवासी बन चुका तेरे चमन का रूठ माली !
गा मधुर संसार वाली !

जानकर जिसको न जाना
क्या उसी की याद आयी ?
आँसुओं की बाढ़ बनकर
कौन - सी फरियाद आयी ?
मत लुटा मोती नयन के, हो न यह भंडार खाली ।
गा मधुर संसार वाली !

राह है आसान उसकी
जो न किस्मत को टटोले,
हूक से दिल टूक हो पर
जो न मन का भेद खोले,
प्यार जिसने पा लिया है, पा लिया संसार, आली !
गा मधुर संसार वाली !

★

पावस-पूनम

दिल के तारों का ले सरगम,
आया प्यारा पावस-पूनम !

यह पावस का पूनम आया
दुनियों का प्यार-दुलार लिये,
लेकर आशा की नई किरण,
छवि का नूतन बाजार लिये,

शुचि स्निग्ध सुभग शीतलता से
बह रही सुधा की धारा है,
पूनम आया जग से मिलने
टूटी वीणा के तार लिये,

इस सौम्य सुधाकर को कोई
ले सकता देखे बिना न दम,
दिल के तारों का ले सरगम
आया प्यारा पावस-पूनम !

कुछ नई जान भर गई, अरे
नव जीवन की झंकारों में,
भर गया नया - सा संदेशा
इन बहते मस्त बयारों में,

जूही की कलियाँ मुस्काईं,
हँस पड़ी 'भ-भा' रजनीगंधा,
भुज-पाश बढ़ाकर वल्लरियाँ
लिपटीं पेड़ों की डारों में,

पूनम तो बस है पूनम ही
अन्तर में लिये न कोई गम,
दिल के तारों का ले सरगम
आया प्यारा पावस-पूनम !

पूनम है नभका प्रणय-ज्वार,
पूनम है नाम जवानी का,
जो जोश बाँट जाता जग में
पूनम है नाम रवानी का,

जिसके अंचल में जड़े हुए
हैं हीरे नये सितारों के,
लो, आज मिलन में बिछड़ गई
बिन्दी, 'पूनम' उस रानी का,

पलकों में पूनम रहे सदा
बादल से इसे बचायें हम,
दिल के तारों का ले सरगम
आया प्यारा पावस-पूनम !

विरहिनी कुमुदिनी प्यारी के
यह जीने की वेला आयी
प्रियतम को पाकर नाच उठी
दो घड़ी 'कुमुदिनी-मुस्काई',

जो घूँघट-पट को दूर हटा
निज पिय की वाट निहार रही,
रे, आसमान की डोली में
यह किसकी लालपरी आयी!

साकार बनी जाती दिल में
ध्वनि पायल की मुखरित छम-छम,
दिल के तारों का ले सरगम
आया प्यारा पावस - पूनम!

नव गीत

प्यार से है प्यार जिसको
हार, उसका हार साथी !

जल गई निधूम बनकर
हाय रे, जिसकी जवानी !
डब - डबाई आँख उसकी
कह रही कोई कहानी !
मोम-सा उसका कलेजा
जख्म का भंडार साथी !
प्यार से है प्यार जिसको
हार, उसका हार साथी !

जीत सकती है न जिसकी
चाल से गतिशील आँधी
प्यार की सीमा नहीं है;
प्रीति जा सकती न बाँधी
हो न सकता भूलकर भी
जो कभी लाचार साथी !
प्यार से है प्यार जिसको
हार, उसका हार साथी !

दूर मंजिल है क्षितिज-सा
साँस का लेकर सहारा
प्यार का प्यासा अकेला
जा रहा राही बेचारा
एक जीने का बना है
प्यार ही आधार साथी !
प्यार से है प्यार जिसको
हार, उसका हार साथी !

वैशाख और सावन

मैं तो वियोग - वैशाख बना जलता हूँ,
तुम हो, रिमझिम वाले संयोगी सावन।

जो श्यामल घन की मधुर दुंदुभी लेकर
नव जागृति का आह्वान फूँक जाता है,
जो मधुर फुहारों का रस-कोष लुटाकर
तरु-किसलय में नव प्राण फूँक जाता है,
काँटों में मुस्कातीं सुकुमारी कलियाँ
लगता जिसका अल्हड़ यौवन मनभावन!
मैं तो वियोग - वैशाख बना जलता हूँ,
तुम हो रिमझिम वाले संयोगी सावन।

जो देख न सकता है जलते इस जग को
पलभर में ही हर रोज घहर जाता है,
अलका की क्यारी से नव रंग-विरंगी
ले नन्ही बून्दें, रोज झहर जाता है,
जिसकी सतरंगी प्यार-भरी साड़ी की
कल्पना विश्व को लगती बड़ी सुहावन,
मैं तो वियोग-वैशाख बना जलता हूँ,
तुम हो रिमझिम वाले संयोगी सावन।

मुँह पर ज्वाला ले, दिल में आग छिपाये,
सुनसान चिता-सा मैं गुम-सुम जलता हूँ,
परदेश चला जाता है जिसका प्रियतम,
विरही के व्याकुल अन्तर-सा पलता हूँ,
मैं दीप जला करता तेरे मन्दिर का,
तुम स्नेह-सिन्धु गंगा-यमुना-सा पावन।
मैं तो वियोग-वैशाख बना जलता हूँ,
तुम हो रिमझिम वाले संयोगी सावन।

प्रवासी मांग रहा है प्यार

सलोनी जागो ओ, सुकुमार
प्रवासी माँग रहा है प्यार।

मनोहर मादक छवि को देख
खिंची जो आँखों में तस्वीर,
वही अन्तर में बैठी, देवि!
बनी कुछ मीठी-मीठी पीर,
सँभाले अधरों पर मुस्कान;
लिये अन्तर में हाहाकार,
सलोनी जागो ओ, सुकुमार
प्रवासी माँग रहा है प्यार।

विरह से टूटे दिल के तार,
न बज पाये अन्तर के बीन,
जलाये जो आशा के दीप
शिखा उसकी हो गई मलीन,
बहा दो स्नेह - सुधा - रस-धार
कि हो नव जीवन का संचार।
सलोनी जागो ओ, सुकुमार
प्रवासी माँग रहा है प्यार।

सतायी तुम्हें न क्या इस बार
सजनि! क्या सावन की बरसात?
कलेजे पर रख कर पाषाण
कटी कैसे भादों की रात?
न देखे सपने क्या अनजान,
अरी, सुधि क्यों दी सजनि बिसार?
सलोनी जागो ओ, सुकुमार
प्रवासी माँग रहा है प्यार।

कभी परदेशी का ही प्यार
मचाता हिय में हाहाकार,
कि जिसकी विरह-वेदना देख
प्रणय बन जाता है साकार,
न खुल पाई अलसाई आँख
पुकारा सपनों में सौ बार!
सलोनी जागो ओ, सुकुमार
प्रवासी माँग रहा है प्यार।

चूमते चँदा को चितचोर,
खुले घन-से कजरारे केश,
मिलन की है अन्तिम अभिलाष
प्राण के प्याले में अवशेष,
रही मिलने की वेला बीत
न कर पायी अबतक शृंगार!
सलोनी जागो ओ, सुकुमार
प्रवासी माँग रहा है प्यार।

लुटे क्या जीवन के अनुराग ?
गईं क्या सुख की घड़ियाँ बीत ?
न उठते क्या अन्तर में ज्वार
प्रवासी के सुन गीले गीत ?
अरी, ओ जीवन के आधार !
न खुल पाये क्या दिल के द्वार ?
सलोनी जागो ओ, सुकुमार,
प्रवासी माँग रहा है प्यार।

तुम्हारी पलकों में हैं बन्द
सिसकते जीवन के अरमान,
करूँ क्या सचमुच यह विश्वास,
'सिसकना ही जीवन का प्राण ?'
बना, निज पायल-रव से देवि !
प्रतीक्षित चिर सपने साकार।
सलोनी जागो ओ, सुकुमार
प्रवासी माँग रहा है प्यार।

★

उलझी व्यथायें

टूट ना जाये तुम्हारी कल्पना के तार,
मैं हृदय की कल्पनाएँ भेज देता हूँ।
आज व्याकुल हैं हृदय में हीरकों के हार
इसलिये अपनी कथायें भेज देता हूँ।

नाचते इन लोचनों में स्नेह के बन्धन,
अर्ध विकसित तन तुम्हारे; अर्ध विकसित मन,
रुक न जाये रे, तुम्हारी जिन्दगी के ज्वार
मैं हृदय की कामनायें भेज देता हूँ।

नाच उठती है जवानी चेतना रंगीन;
झन-झना उठते अचानक अन्तरा के वीन,
आँख की पिचकारियों में भर गुलाबी प्यार,
बन्द कर उलझी व्यथायें भेज देता हूँ।

छोड़ दे मधुमास में घर वह अभागा है,
पर न समझो, प्यार का अंकुर न जागा है,
कर दिये मजबूरियों ने बेतरह लाचार,
मैं सँजोकर भावनायें भेज देता हूँ।

बीत जायेगी सिसक कर ही सलोनी रात!
पर न आयेगी हृदय में स्नेह की बारात!
जल न जाये रे, विरह में प्यार का संसार!
आँसुओं में वेदनाएँ भेज देता हूँ।

क्या, तुम्हींने आँसुओं में प्राण फूँके हैं?
कोकिला के कंठ में आह्वान फूँके हैं?
टूट ना जाये मिलन की साँस की पतवार,
इसलिये दिल की दुआयें भेज देता हूँ।

बच नहीं सकते झुलस कर प्रेयसी के प्राण,
हो नहीं सकते विरह भी शांति के वरदान,
लूट ले शायद जमाना यह अछूता प्यार,
इसलिये तीखी व्यथायें भेज देता हूँ।

★

वैधव्य की शिला

कौन यह भूली भटकती आ गई
सौम्य की पहली किरण सुकुमारिका !
बन गई मायानगर में मोहवश
कुल-बधू, कुल के नयन की तारिका !

खिल गई अरविन्द की कोमल कली
प्रात-रवि का ज्यों सुनहला पौ फटा,
छा गई अरमान पर यह कौन-सी
गर्जना करती हुई काली घटा!

ले नई नगरी नये अरमान की
भ्रान्त बन कोई किशोरी यह चली,
हो न पाया था अभी मध्याह्न भी
शाम होने को किरण रवि की ढली!

प्यार - पल्लविनी न पूरी हो सकी
आज तक आईं न सोलह डालियाँ!
चूमतीं कल तक बड़े आह्लाद से
कल कपोलों को कनक की बालियाँ!

झाँकती मुँह पर जवानी की लहर,
है अभी बाकी रगों में अरुणिमा,
प्यार के ऊफान से उभरा जिगर
कह रहा रस-कोष क्या थोड़ा कमा?

आँख तक आकर भले ही झाँक ले
पर, उसे आँसू बहाना है मना,
आह अबतक भर चुकी तो भर चुकी;
किन्तु अब करवाल है सिर पर तना,

हाय रे, मुस्कान जिसके होंठ पर
कर न सकती भूल कर रंगरेलियाँ,
हाय रे, जिसके गुलाबी प्यार को
चूम सकतीं अब न जूही-बेलियाँ!

रोज ही जिससे लिपट कर कल तलक
खेलती आई मचलकर पूर्णिमाँ,
आज भी गुलजार तो है वह चमन;
किन्तु डेरा डालती कोई अमाँ!

कौन उसको अब कहेगा—'प्रियतमा!',
हाय! किसको वह कहेगी—'हे पिया!',
काट कर कोमल कलेजा देख लो,
है हजारों टूक में टूटा हिया!

सिसकियों में रात सारी काट ले,
पर, न सकती है बदल वह करवटें !
डस रहीं नागिन सरीखे, पालतू
आज उसके ही चिकुर की वे लटें !

नाचती उद्दाम - सी रण - चण्डिका
आख सूखे-से अधर पर बेवसी !
प्यार से वह प्यार तो करती नहीं
दुष्ट दुनियाँ कर रही छींटाकशी !

कल दुकूलों पर उषा की अरुणिमा,
आज है मध्याह्न की तीखी किरण !
जल रहा निर्धूम बनकर देख लो,
प्यार में डूबा हुआ भीगा वतन !

घाव हो जाये न अन्तर के हरे,
मत कहो रे भूल इसको षोड़शी !
आज मधुवर्षी तरसती मधु - बिना
यह गई दुर्भाग्य - नागिन से डसी !

आँख अपनी खोल, मत हो बेखबर,
और गा ले आज तू युग - भैरवी,
लपलपाती लौ भयावह आ रही
जो युगों से आग सीने में दबी,

खेल मत नादान रे, तूफान से
खोल आँखें, आप को पहिचान ले,
आग की छोटी-कणी भी विश्व में
है प्रलय–परिचारिका, तू जान ले।

देख ले, ओ निर्दयी संसार तू,
एक यह भोली कली है अधखिली !
खेल ले उसके लहू से होलियाँ,
जी न पाये अब जहाँ में दिलजली !

पी रहे तू हो विजय, की बूटियाँ,
और उसका सूखता जाता गला,
फेर ले आँखें, तड़पती देख कर
यह किसी इन्सान को कोई कला !

काट लो पंजा मचलकर राहु का,
जो न अब लूटे किसी के चाँद को,
है टिकी जिसके सहारे यह धरा
बन्द मत कर व्यालिनी के माँद को,

उस नवोढ़ा को बनाते आज क्यों,
दुष्ट, रे मानव ! कहो, उन्मादिनी ?
बन गई बंजर तुम्हारा यह धरा,
देख, रोती मौन वीणा-वादिनी,

अवयवों में है लहू थोड़ा गरम
तो सँभालो आज अपनी तूलिका,
भाग्य का उसके पुनः निर्माण कर,
बन गई यह एक अबला धूलिका !

मदनिका

भुवन-मन-मोहिनी,
गज - गामिनी,
कुछ गुन-गुना गाती,
लिये दो रस-कलश
यह गाँव की
गोरी चली जाती!

चली जाती, गजब ढाती, विकल कुछ उन्मना होकर
नयन की नीलिमा में नव सँवारे प्यार-पिचकारी,
वयस विकसित न हो पायी, न घड़ियाँ प्यार की आयीं,
उठा लेती मचलकर क्यों गगरिया री, भरी भारी,

न जानें क्यों विकल होकर अनिल का वह चपल झोंका
हटा दामन, रसीला बन, उमरिया चूम लेता है,
कि घायल मूक रसिया का सलोना मद-भरा लोचन
हृदय की बाटिका में गुन-गुना कर घूम लेता है,

कि जिसकी एक स्वर-लहरी विजन में प्रतिध्वनित होकर
हृदय में एक अंगीठी जलन की रोज सुलगाती !

किशोरी यह प्रकृति की कर रही आराधना जग की
लिये बस भावनाओं के सुमन की शुभ्र डाली है,
मिलन की आश में आकुल चली यह फुट-पुटी वेला
जुड़ा ले आज दिल चाहे, नयन की सेज खाली है,

फटा ज्योंही क्षितिज का पट, हटा ज्योंही सुघर घूँघट;
कि भोली चाँदनी लखकर मनुज बेहाल बन जाता!
मचलतीं भाव-वल्लरियाँ, बरसतीं स्नेह-फुलझड़ियाँ
कि पत्थर का कलेजा भी पिघल कर ताल बन जाता!

बचा चितचोर से तिरछी नजर कैसे चली जाऊँ?
कन्हैया काश! मेरी बेवसी दुनियाँ समझ पाती!

न कह पाते डगर, बतला न पाते पेड़ के पत्ते,
न किंचित् याद है कब बन गई इस विश्व की दासी,
भरे अरमान के सागर, लिये लोचन युगल गागर
पिलाती नित सुधा जग को स्वयं ही रह गई प्यासी,

अरे, मुझको बता, कोई पता, इन्सान के नाते
उतारे जो गगरिया मौन वह मेरा कहाँ नागर ?
यही इन्साफ क्या, दूरी बदलती रोज मंजिल की,
थके हैं पाँव अब इतने छलक पड़ती भरी गागर !

सुमन के स्नेहमय सौरभ न किंचित् शांति फैलाये
बनी क्यों आज यह प्यारी मधुर मुस्कान संघाती !

किसी का दीपक बुझा न देना

किसी की दुनियाँ बनाने वाले,
किसी की दुनियाँ मिटा न देना।

कभी न सोचा, मगर किधर से
उमड़ चले क्यों हजार सपने!
जो आये अब तक चले गये सब
कभी अतिथि क्या हुए हैं अपने?

रहेगी शाश्वत मगर शिला पर
जो खींच दी तुमने एक रेखा,
न जानें कितने दीये जलाये
मगर न मिटने का स्वप्न देखा,

किसी की किस्ती चलाने वाले
किसी की किस्ती डुबो न देना।

किसी के आँगन में आये संध्या
किसी के जीवन में हो सबेरा !
कहीं चमकते हों चाँद - तारे
किसी की दुनियाँ में हो अँधेरा !

अरे, न खींचो कमान अपनी
क्या जग में केवल यही सजा है ?
बनाने वाले तुम्हें बधाई,
मगर मिटाने में क्या मजा है ?

किसी का दीपक जलाने वाले,
किसी का दीपक बुझा न देना।

★

विदा-वेला

ओ भव्य रति की बालिके !

षोड़श कला का साज सज
मंजुल विभा के जाल से,
अपना हिया सुख से जुड़ा,
शुचि बाल रवि के भाल पर
गाते विहग से गान ले
शाश्वत विरह उपहार दे,
जलता धधकता प्यार दे,
संचित सभी अरमान ले,
पंकज मुकुल के गाल पर
भर साँस में मादक सुरा
उर ले वृहद् शैवाल से
जाती कहाँ हो आज तज

सौंदर्य - दीपक-मालिके !

जाते समय संग घूम लूँ,
शीतल शुभे ! मुस्कान दूँ
मैं माँग पूनो से तुम्हें,
मुस्कान की ताली बजा
शुचि शुभ्र अंचल में मृदुल
मकरन्द का उपहार लो !
मेरा मधुर संसार लो,
ले कल्पना का जग विपुल
निज नेत्र-डाली में सजा
माला पिरोने को तुम्हें—
कुछ मोतियों के दान दूँ,
जी चाहता फिर चूम लूँ

हे चिर विरह की पालिके !

★

... ... !

नित - नित नूतन तोर चुभाये
व्याकुल मन बन गया वियोगी,
अब कहते क्यों पत्थर बनकर
यह पूजा स्वीकार न होगी ?

•

अमरावती : एक दृष्टि

.....कवि 'विद्यार्थी' की 'अमरावती' गुणवती, रसवती और भाववती है। भावोद्रेक, रसोद्रेक और रूपोद्रेक का विरल सामंजस्य इस संग्रह की नीजी विशेषता है। सफलता के लिए मैं कवि को बधाई देता हूँ और 'अमरावती' के व्यापक अभिनन्दन का शुभाशंसी हूँ।

—श्री रामदयाल पाण्डेय

..... नई सड़क पर नये कवियों का जो समूह उमड़ा चला आ रहा है उससे सर्वथा पृथक कवि 'विद्यार्थी' का व्यक्तित्व प्रतीत होता है। संभावनाएँ यथेष्ट हैं। मैं अमरावती का अभिनन्दन एवं कवि का हिन्दी संसार में स्वागत करता हूँ।

– श्री 'रमण', अनामा, राँची

'अमरावती' की रचनाओं को सरसरी निगाह से देखने के लिए जो नजर दौड़ाई तो गति हिरन की कुलाँचें भूल कर गज-गामिनी बन गई। 'अमरावती' की यह पकड़ ही पर्याप्त है।..... .....

—श्री ब्रजकिशोर नारायण

सुकवि श्री विद्यार्थी जी की 'अमरावती', यों तो, उनकी पहली काव्य-कृति है; पर प्रतीत होता है कि परम्परा, परिवर्तन, प्रगति और प्रयोग की समन्वित काव्य-विधा का घनीभूत संस्कार उनका पाथेय है; सहज शैली की प्रांजलता और शालीन व्यक्तित्व की अनुभूतियों से उनकी पथ-रेखा बनी है; और अनेक रमणीय प्रमाण हैं कि वे 'अमरावती' से ही अपनी यात्रा का आरम्भ करने की क्षमता रखते हैं; तो उनके लक्ष्य की कल्पना ही हिन्दी कविता के लिए एक नयी प्रेरणा होनी चाहिए। **—राजेन्द्र प्रसाद सिंह**